❖ ओ३म् ❖

आर्ष-ज्योतिः

श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास

का

द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

फाल्गुन-चैत्रमासः, विक्रमसंवत् - २०७४ / मार्चमासः-२०१७

वर्षम् - ९ :: अङ्कः - १०५ मूल्यम्- रु. ५ प्रति, वार्षिकम्-५०

❖संरक्षकाः❖

स्वामी प्रणवानन्दः सरस्वती

कै. रुद्रसेन आर्यः

प्रो.पीयूषकान्तदीक्षितवर्याः

श्रीगिरीश-अवस्थीवर्याः

❖परामर्शदातृमण्डलम्❖

डॉ. रघुवीरवेदालङ्कारः

प्रो. महावीरः

आचार्ययज्ञवीरवर्याः

श्रीचन्द्रभूषणशास्त्री

❖मुख्यसम्पादकौ❖

डॉ. धनञ्जय आर्यः

रवीन्द्रकुमारः

❖कार्यकारी सम्पादकः❖

ब्र. शिवदेवार्यः

❖व्यवस्थापकाः❖

ब्र. अनुदीपार्यः

ब्र. कैलाशार्यः

❖कार्यालयः❖

श्रीमद्दयानन्द-आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्

दूनवाटिका-२, पौंधा,

देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)

दूरवाणी - ०९४११११०६१०४,८८१०००५०९६

website: www.pranwanand.org

E-mail : arsh.jyoti@yahoo.in

विषय-क्रमणिका

विषयः	पृष्ठः
सम्पादकीय	२
मेरा मानव समाज	५
आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या	७
क्या वृक्षों में जीव हैं... ?	९
वर्णव्यवस्था तथा जातपात का प्रभाव	१६
प्रियभारतं मे	१८
श्रद्धाञ्जली गीत	१९

सभी सहृदय पाठकों को भारतीय नववर्ष विक्रमी संवत्-२०७४ एवं सृष्टिसंवत्-१,९६,०८,५३,११८ तथा होलिकोत्सव की हार्दिक शुभकामनाएँ।

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशनतिथि- ३ मार्च २०१७ :: डाकप्रेषणतिथि- ८ मार्च २०१७

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

सम्पादक की कलम से...

सृष्टि विवेचनम्

पर्व मनाने की परम्परा में नववर्ष का पर्व विशेष महत्व रखता है, क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति चैत्र मास शुक्ला प्रतिपदा को स्वीकार की जाती है। किसी कवि ने कहा है कि-

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्म ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रे तु सदा सूर्योदये सति।।

सृष्टि किसे कहते हैं इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज आर्योद्देश्यरत्नमाला में कहते हैं कि-'जो कर्त्ता की रचना से कारण द्रव्य किसी संयोग विशेष से अनेक प्रकार कार्यरूप होकर वर्त्तमान में व्यवहार करने योग्य होती है, वह सृष्टि कहाती है।' इसी बात को स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में कहते हैं कि 'सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक्द्रव्यों को ज्ञान, युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना।'

हम सभी इस सिद्धान्त से अवगत हैं कि किसी भी वस्तु का निर्माणकर्ता अवश्य होता है। निर्माणकर्ता पहले होता है और निर्मितवस्तु पश्चात् होती है। परमेश्वर सृष्टिकर्ता है और उसने जीवों के कल्याण के लिए यह सृष्टि बनायी। सृष्टि के सृजन से पूर्व मूल प्रकृति सत्व-रज-तम की साम्यावस्था में होती है।

सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कहते हैं कि - अनादि नित्य स्वरूप सत्व, रजस् और तमो गुण की एकावस्था रूप प्रकृति से उत्पन्न जो परम सूक्ष्म पृथक्-पृथक् तत्वायव विद्यमान हैं, उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का प्रारम्भ है, संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी इसकी अवस्था को सूक्ष्म से स्थूल, स्थूल से बनते बनाते विविधरूप बनी है, इसी से संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि
वा न वेद॥ (ऋग्वेद-१०.१२९.७)

इस ऋग्वेदीय मन्त्र के आधार पर कहा गया है कि जिस परमेश्वर के द्वारा रचने से जो नाना प्रकार का जगत् उत्पन्न हुआ है,वही इस जगत् का धारणकर्ता, संहर्ता व स्वामी है।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यैरसाच्च विश्वकर्मणः
समवर्त्तताग्रे। अस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य
देवत्वमाजानमग्रे॥ (यजु.३१.१७)

(तेन पुरुषेण पृथिव्यै पृथिव्युत्त्पत्यर्थमद्भ्यो रसः सं भृतः संगृह्य तेन पृथिवी रचिता। एवमग्निरसेनाग्नेः सकाशादाप उत्पादिताः। अग्निश्च वायोः सकाशाद्वायुराकाशादुत्पादित आकाशः प्रकृतेः प्रकृतिः स्वसामर्थ्याच्च। विश्वं सर्वं कर्म क्रियमाणमस्य स विश्वकर्मा, तस्य परमेश्वरस्य सामर्थ्यमध्ये कारणाख्येग्रे सृष्टेः प्राग्जगत् समवर्त्तत वर्त्तमानमासीत्। तदानीं सर्वमिदं जगद् कारणभूतमेव नेदृशमिति। तस्य सामर्थ्यस्यांशान् गृहीत्वा त्वष्टा रचनकर्त्तेदं सकलं जगद्विदधत्।) -ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सृष्टिविद्याविषयः

अर्थात् परमपिता परमेश्वर ने पृथिवी की उत्पति के लिए जल से सारांश रस को ग्रहण करके, पृथिवी और अग्नि के परमाणुओं को मिला के पृथिवी रची है। इसी प्रकार अग्नि के परमाणु के साथ जल के परमाणुओं को मिलाकर जल को रचा एवं वायु के परमाणुओं के साथ अग्नि के परमाणुओं से वायु रचा है। वैसे ही अपने सामर्थ्य से आकाश को भी रचा है, जो कि सब तत्वों के ठहरने का स्थान है। इस प्रकार परमपिता परमेश्वर ने सूर्य से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् को रचा है।

सृष्टि उत्पत्ति विषय को अंगीकार कर ऋग्वेद

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

में इसका निरुपण इसप्रकार किया गया है कि –

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।

अर्थात् प्रदीप्त आत्मिक तप के तेज से ऋत और सत्य नामक सार्वकालिक और सार्वभौमिक नियमों का प्रथम प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात् प्रलय की रात्री हो गई। किन्हीं भाष्यकार के मत से यहाँ रात्री शब्द अहोरात्र का उपलक्षण है और वे उस से प्रलय का ग्रहण न करके इसी कल्प की आदि सृष्टि के ऋतुओं सत्य के अनन्तर अहोरात्र का अविर्भाव मानते हैं। फिर मूलप्रकृति में विकृति होकर उसके अन्तरिक्षस्थ समुद्र के प्रकट होने (उसके क्षुब्ध होने) के पश्चात् विश्व के वशीकर्ता विश्वेश्वर ने अहोरात्रों को करते हुए संवत्सर को जन्म दिया। इससे ज्ञात होता है कि – आदि सृष्टि में प्रथम सूर्योदय के समय भी संवत्सर और अहोरात्रों की कल्पना पर ब्रह्म के अनन्त ज्ञान में विद्यमान थी। उनके जन्म देने का यहाँ यहीं अभिप्राय प्रतीत होता है कि वेदोपदेश द्वारा इस संवत्सरारम्भ और उसके मन कल्पना का ज्ञान सर्वप्रथम मन्त्र द्रष्टा ऋषियों को हुआ वा यों कहिये कि – प्रत्येक सृष्टिकल्प के आदि में यथा निमय होता है और उन्होंने यह जान लिया कि – इतने अहोरात्रों के पश्चात् आज के दिन नवसंवत्सर के आरम्भ का नियम है और उसी के अनुसार प्रतिवर्ष संवत्सरारम्भ होकर वर्ष, मास और अहोरात्र की कालगणना संसार में प्रचलित हुई।

भारतीय संवत् के मासों के नाम आकाशीय नक्षत्रों के उदयास्त से सम्बन्ध रखते है। यही बात तिथि अंश (दिनाङ्क) के सम्बन्ध में भी है। वे भी सूर्य-चन्द्र की गति पर आश्रित हैं। विक्रम-संवत् अपने अंग-उपागों के साथ पूर्णतः वैज्ञानिक सत्य पर स्थित है। विक्रम-संवत् विक्रमादित्य के बाद से प्रचलित हुआ। विक्रम-संवत् सूर्य सिद्धान्त पर आधारित है। वेद-वेदांगमर्मज्ञों के अनुसार सूर्य सिद्धान्त का मान ही सदैव भ्रमहीन एवं सर्वश्रेष्ठ है। सृष्टि संवत् के प्रारम्भ से लेकर आज तक की गणनाएँ की जाए तो सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार एक भी दिवस का अन्तर नहीं होगा। सौर मण्डल को ग्रहों, नक्षत्रों आदि की गति एवं स्थिति पर हमारे दिन, महीने और वर्ष पर आधारित हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में कहते हैं कि-'आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती, क्योंकि जब स्त्री पुरुष के शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है, तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।'

सृष्टि और प्रलय को शास्त्रों में ब्रह्मदिन-ब्रह्मरात्री के नाम से जाना जाता है, ये दिन-रात के समान निरन्तर अनादि काल से चले आ रहे हैं। सृष्टि और प्रलय का समय बराबर माना है, इसमें कोई विवाद नहीं है। इसी प्रक्रिया को स्वामी जी कुछ इसप्रकार परिभाषित करते हैं कि – जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन, तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है। इसकी आदि वा अन्त नहीं, किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है, उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, जैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और वर्तमान प्रवाह से अनादि हैं, जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है, कभी सूख जाता है, कभी नहीं दीखता फिर बरसात में दीखता और उष्ण काल में नहीं दीखता ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिए, जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं, वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि है जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय यह अनवरत चलने

घ

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

वाला चक्र है। ऋषिवर देव दयानन्द जी ऋग्वेदादिभाष्यादि के वेदोत्पत्ति विषय में लिखते हैं कि-

'सृष्टि के वर्तमान होने का नाम दिन और प्रलय होने का नाम रात्रि है। यह जो वर्तमान ब्राह्मदिन है इसके (१९६०८५२९७६) एक अर्ब, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नव सौ, छहत्तर वर्ष इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में व्यतीत हुए हैं और (२३३३२२७०२४) दो अर्ब तैंतीस करोड़, बत्तीस लाख, सत्ताइस हजार, चौबीस वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं। इन में से अन्त का यह चौबीसवां वर्ष भोग रहा है। आगे आने वाले भोग के वर्षों में से एक-एक घटाते जाना और गत वर्षों में क्रम से एक वर्ष मिलाते जाना चाहिए, जैसे आज पर्यन्त घटाते बढ़ाते आए हैं।'

(वेदोत्पत्ति विषय, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

ऋषि का अनुसरण करते हुए वर्तमान विक्रमी सम्वत् २०७४ को हम इस प्रकार से देखें-

एक सृष्टि	=	१४ मन्वन्तर
१ मन्वन्तर	=	७१ चतुर्युग
१ चतुर्युग	=	सतयुग (१७,२८,०००)
		त्रेतायुग (१२,९६,०००)
		द्वापरयुग (८,६४,०००)
		कलियुग (४,३२,०००)
		कुलयोग = ४३,२०,०००
७१ चतुर्युग (४३,२०,०००%७१)	=	३०,६७,२०,००० वर्ष
१४ मन्वन्तर (३०,६७,२०,०००%१४)	=	४,२९,४०,८०,००० वर्ष

(१४ मन्वन्तर - स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि तथा इन्द्रसावर्णि)

कुल सृष्टि की आयु = ४,२९,४०,८०,००० वर्ष

सृष्टि की वर्तमान आयु = १,९६,०८,५३,११८ वर्ष

इस प्रकार वर्तमान सृष्टि की आयु कुल आयु से घटाने पर सृष्टि की आयु २,३३,३२,२६,८८२ अभी शेष रहती है। यह वैवस्वत् नामक सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान में चल रहा है।

अनेक आचार्य १४ मन्वन्तरों की १५ सन्धिकाल के अवधि की गणना पृथक् करते हैं जिसके आधार पर वर्तमान सृष्टिसंवत् १,९६,०८,५३,११८ में ७ सन्धिकाल की आयु (७%१७,२८,०००) १,२०,९६,००० मिलाकर १,९७,२९,४९,११८ सृष्टिसंवत् स्वीकारते हैं।

प्रत्येक संवत्सर अर्थात् वर्ष को २ अयन (उत्तरायण एवं दक्षिणायन), ६ ऋतु (वसन्त, गीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर, हेमन्त), १२ मास (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन), २ पक्ष (शुक्ल एवं कृष्ण), ७ दिवस (रविवार, चन्द्रवार या सोमवार, भौमवार या मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार या गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार), १ अहोरात्र (दिन) अर्थात् ८ प्रहर में विभक्त किया गया।

परमपिता परमेश्वर ने सृष्टि का निर्माण व इसको नियमित रूप से चलाये रखा है। उस परमेश्वर को जानने वाले हम लोग होवें। इसीलिए वेद हमें बार-बार उपदेश देता है कि-

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (ऋग्वेद-१०.१२९.१)

अर्थात् हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है, वही एक सृष्टि के पहिले वर्तमान था, जो इस सब जगत् का स्वामी है और वहीं पृथिवी से लेके सूर्यपर्यन्त सब जगत् को रच के धारण कर रहा है। इसलिए उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देव की ही हम लोग उपासना करें, अन्य की नहीं।

सभी सहृदय पाठकों को भारतीय नववर्ष विक्रमी संवत् २०७४ एवं सृष्टिसंवत् १,९६,०८,५३,११८ तथा होलिकोत्सव की हार्दिक शुभकामनाएँ।

ब्र. शिवदेव आर्य
गुरुकुल-पौन्धा, देहरादून
मो.-८८१०००५०९६

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

मेरा मानव समाज

❑ ब्र. यशदेव आर्य...✍

हमारा समाज विभिन्न प्रकार के तत्वों के समागम से मिलकर बना होता है, जिसमें प्राणीमात्र के हितैषी लोगों का जमावाड़ा देखने को मिलता है, पूर्ववत् का तात्पर्य यहाँ पर पशुओं के उन अव्यवस्थित समूहों से नहीं, अपितु मनुष्योचित रहन-सहन, खान-पान एवं उनके सदाचार व व्यवहार से है। परन्तु स्वार्थान्धता से पूर्ण आज का प्राणीसमाज मनुष्योचित आचार व्यवहार से दूर पशुवत् रहन-सहन को अपना रहा है अथवा अपना चुका है। जो कि चिन्तनीय गंभीर विषय है। आज मनुष्य समाज, समाज न होकर एक पशुओ का समूह अथवा संघटन जिस प्रकार से दो श्वान स्व जातीय होने पर भी एक साथ रहने खाने में आपत्ति प्रकट करते है, आपस में कलह करते है। उसी प्रकार ये मनुष्य समाज भी सजातीय (मनुष्य) होते हुए भी अपने अमैत्रीपूर्णव्यवहार के कारण इस पवित्र समाज को समज बनाने की भूल कर रहा है, और वो भी मजहबी साम्प्रदायिक तथा जातिवाद के आधार पर, फिर वह हिन्दू हो या मुसलमान अथवा कोई भी धर्मावलम्बी जन। इसी प्रकार जातिवाद, जो वर्षों से भारतीय जनमानस को खोखला एवं विचार हीन बना रहा है कहीं पर शर्मा उच्च है तो भंगी नीच गुर्जर, रातपूत ऊँचे हैं तो हरिजन आदि तथाकथित जातियाँ नीच है। यह बडा ही दुखद विषय है कि धर्म के ठेकेदार धर्म के नाम पर मनुष्य समाज को आपस में कलह करने की उत्तेजना प्रदान कर रहे है, वही जातिवाद के विष के द्वारा उन भोले और तथाकथित समाज के नाम से बहिष्कृत निम्न जातीय लोगों का उत्पीडन आधुनिक समाज की हीनता को प्रकट करता है। उच्च वर्ग सामाजिकता के आधार पर और निम्न प्रकार के धर्मावलम्बी जन धर्म के नाम पर उन सज्जनों को उत्पीडित कर रहे है, दु:ख पहुँचा रहे है जिनका इससे दूर-दूर तक कोई सरोका नहीं जो इन सबसे अलग स्वयं को मनुष्य कहना और मानना पसंद करते है। विचारणीय यह है कि जब एक मनुष्य अपने सजातीय को यह कह कर उत्पीडित करता है कि यह अमुक धर्मावलम्बी है यह हमारे धर्म मजहब के अनुसार आचरण नही करता यह काफिर है इसाई है मुसलमान इत्यादि और फिर वही व्यक्ति चुनाव आदि कार्याक्रमों में एकता के गीत गाता है। क्या यह दु:खद नहीं है। विश्व इतिहास के वे उज्ज्वल पन्ने कुछ भी साम्प्रदायिक दंगों, धर्म के नाम पर हुए युद्धों और समाज के द्वारा किये गये निम्न जातीयकों के शोषण एवं कुछ अनचाहे तत्वों की वजह से कालवसात रक्त से भीगे होने के कारण घृणित दिखाई पडते है सिर्फ मनुष्य में मनुष्यत्व न होने के कारण यह समाज सम्प्रदायवाद, जातीवाद की विकट अग्नि की भेंट चढ जाता है जहाँ होता है तो सिर्फ अंधकार, कलह, द्वेष और इर्ष्या। जातीय कलह की यह विकट अग्नि जिसे आज तक भी कोई आन्दोलन या यूँ कहे कि सद्मनुष्यों का सामूहिक प्रयास भी शान्त नही कर सका है और धीरे-धीरे वे आन्दोलनकर्ता सद्मनुष्य भी इसी प्रवाह में बह गए ऐसा हो गया है हमारा समाज। अरे सबसे पहले हम मनुष्य है और हमारा यह कर्तव्य है कि हम मनुष्योचित व्यवहारों को अपनाए फिर समक्ष चाहे कोई पशु ही क्यों न हो क्योंकि हमारे बीच रहने वाला प्रत्येक वह प्राणी हमारे समाज का अभिन्न अंग हो जाता है, क्या हमारे माता पिता ने बीमार होने पर कभी ऐसा कहा कि इसे कसाई को दे देते है या फिर हमने उनके लिए ऐसा सोचा ही न हो, फिर क्यों हम एक मूक प्राणी पर इतना अत्याचार करते है कि बूढा होने पर या रूग्णता में उसे कसाई को सौंप देते है। जबकि जीवन भर उसका भरपूर उपयोग किया, दूध पिया बदले में क्या दिया खाने को सूखा चारा गलती करने पर गाली और डंडा क्या यही मनुष्यत्व है-क्या यही समाजिकता है क्या वह प्राणी हमारे ही समाज का अंग नहीं था अरे था क्योंकि

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

वह बाह्य रूप में ही नहीं अपितु हमारे मन के साथ जुड़ा हुआ था। एक व्यक्ति जब कभी किसी हिंसक जीवों के समूह में चला जाता है और वहाँ से सकुशल लौट आता है। विचारने पर ज्ञात होता है कि वह भूखा नही था अथवा कोई और कारण, इससे इतना ज्ञात हो जाता है कि पशु होते हुए भी वो भी हिंसक, उसने अपनी स्वाभाविकता अपनी मर्यादा को नही लांघा और हमें तब अपना मनुष्यत्व जिस पर हम अभिमान करते है उस मूक में दिखाई देता है, और यदि वह आक्रमण कर भी दे अपने स्वभाववश तो फिर मेरा समाज जिसे इस बात का अभिमान है कि वह मनुष्य है उस प्राणी को घृणास्पद दृष्टि से देखता है और उसकी हिंसा के विचार हमारे मन में पनपने लगते है, परंतु मानवता के झूठे मद में चूर क्या हम कभी यह विचार कर पाए कि आखिर किन परिस्थितियों में उसने हिंसा की भूख, स्वभाव या सुरक्षा तीनों ही परिस्थितियां उस पशु के अनुकूल उसकी पक्षधर है फिर हम क्यों अकारण ही उन पर दोष आरोपित करते हैं जबकि कुचेष्टाएं हमारी ही होती हैं। अरे अकारण तो पशु भी क्षति नहीं करतें। फिर हम तो मनुष्य है जो आपस में एक दूसरे की खुशी से जलते है, कही धर्म के नाम पर तो कही जाति के। हम स्वयं भी अपने जीवन में ऐसा अनुभव विभिन्न घटनाओं के आधार पर करते है जैसे की आतंकीसंगठनों के द्वारा मजहबी आधार पर कत्लेआम करना जातिवाद के नाम पर किसी गरीब का उत्पीड़न। एक व्यक्ति गाय जैसे पवित्र जीव का माँस खाता है। सिर्फ इसलिए कि उसके विराधी को ठेस पहुँचे आखिर इससे क्या प्राप्त हुआ? कुछ नहीं! सिवाय एक दूसरे के प्रति घृणा और नफरत के, इर्ष्या और द्वेष के। क्या यह मनुजता के योग्य है या इसी का नाम समाजिकता है। हम मनुष्य है हमें इसी समाज में रहना है। अतः मनुष्योचित आहार-व्यवहार को अपनाना पडेगा क्योकि यही वह आधार है जहाँ से हम ऊचाईयों को छूने का साहस जुटाना सीखते है।''प्रेम से रहो जरा सी बात पर रूठा नहीं करते, पत्ते वही सुन्दर दिखते हैं जो शाखा से टूटा नही करते''। हमें अपने इस मजहबी चोले को उतारकर मनुष्यता का चोला धारण करना हैं। समाज में फैली कुप्रथाओं, बुराईयों का पूर्णतया बहिष्कार करना होगा। समाज को समाजिकता का सच्चा पाठ पढाना होगा। और इसके लिए जरूरत है तो सिर्फ एक चीज की वह है मनुष्यत्व यदि मनुष्य-मनुष्य बन गया तो समझो सुसमाज को बनने में देर कहाँ हम ऐसा कर सकते है-''It is our choices that show what we true are far more than our abilities'' हम में यें योग्यताए है अतः आईए मनुष्य बने क्योकि स्मृतिकार भी ''मनुर्भव'' का आदेश करते है और यही हमारा पहला कर्तव्य है।

-शास्त्री तृतीय वर्ष
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

राष्ट्रीयसेवा योजना शिविर का समापन

उत्तराखण्ड-संस्कृत-विश्वविद्यालय हरिद्वार से सम्बद्ध गुरुकुल पौन्धा देहरादून की राष्ट्रीय सेवा योजना ईकाई का सप्तदिवसीय विशेष शिविर का आयोजन दिनांक २२ से २८ फरवरी २०१७ तक हुआ। शिविर के दौरान स्वयंसेवियों ने नदी स्वच्छता व पर्यावरण जागरुकता का अभियान चलाया। शिविर के बीच-बीच में अनेक अनुभवी विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। शिविरनिरीक्षणार्थ उत्तराखण्ड-संस्कृत-विश्वविद्यालय हरिद्वार के रा.से.यो. कार्यक्रम समन्वयक डॉ. राकेश कुमार सिंह जी तथा रा.से.यो. के मार्गदर्शक डॉ. सुरेश चन्द्र त्यागी जी उपस्थित होकर स्वयंसेवियों को उत्साहित किया। शिविर समापन के अवसर पर गुरुकुल के प्राचार्य डॉ. धनञ्जय जी, आचार्य चन्द्रभूषण जी, आचार्य यज्ञवीर जी, मांगेराम जी, मार्कण्डेय जी, रामकुमार जी, संजीव जी आदि उपस्थित होकर स्वयंसेवियों को मार्गदर्शन दिया। शिविर का संयोजन रा.से.यो. कार्यक्रम समन्वयक गौतम जी किया।

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या
(स्वामी देवव्रत सरस्वती के कतिपय प्रवचनों का संग्रह)

❑ संकलनकर्ता-आचार्य डॉ. धनञ्जय......

क्रमशः... **सातवा नियम**

सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

आर्यों का व्यवहार कैसा हो इसे सातवें नियम में स्पष्ट किया है। इसमें तीन बातों का ध्यानाकर्षण किया है।

१.प्रीतिपूर्वक का अभिप्राय है – पूर्वाग्रह या पक्षपात को छोड़ मानवीय दृष्टिकोण को सामने रखकर व्यवहार करना। शत्रु, मित्र, तटस्थ, उदासीन ये चारों प्रकार के व्यक्ति सर्वत्र देखे जाते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता को इन सबके साथ समान भाव अर्थात् 'न काहू से दोस्ती न काहू से बैर' रखते हुये प्रेम का व्यवहार रखना चाहिये। प्रेम सीमेण्ट का काम करता है जो पृथक्-पृथक् कठोर ईटों को मिलाकर एक सुदृढ़ दीवार में बदल देता है। मधुर व्यवहार माला के मणकों को एक सूत्र में पिरोने के समान हैं। वेद कहता है-

'अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सजातमिवाघ्न्या'

आपस में इतना प्रेम करो जैसे कि गाय सद्यप्रसूत वत्स से करती है।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह मेरा, यह दूसरे का है ऐसा व्यवहार क्षुद्र हृदय वालों का होता है। उदार हृदय वालों के लिये सारा संसार कुटुम्ब के समान है। प्रेम के व्यवहार से मनुष्य की तो बात ही क्या पशु-पक्षी भी वश में हो जाते हैं। हिंसक प्राणी भी वैर भाव को छोड़ देते हैं। जब हमारे मन में किसी के प्रति घृणा, द्वेष या हिंसा का भाव नहीं होगा तो देर-सवेर दूसरे भी वैसा व्यवहार करने लगेंगे। **आत्मवत् सर्वभूतेषु** अर्थात् जैसा सुख-दुःख मुझे होता है वैसा ही दूसरे प्राणियों को भी होता है। यदि किसी को सन्मार्ग पर लाना है तो उसे भी मधुर व्यवहार से ही अपना बनाया जा सकता है।

१.धर्मानुसार- कहीं यह प्रेम मोह में न बदल जाये और व्यक्ति का विवेक भ्रष्ट नहीं हो जाये इसके लिये महर्षि ने धर्मानुसार व्यवहार करने को कहा है। धर्म यहाँ न्याय का वाचक है जिसमें अपने-पराये का भेद नहीं होता। कई बार अपने परिवार, कुल, खानदान, जाति, धर्म, देश का विचार व्यक्ति को अपने कर्तव्य पथ से विचलित कर देता है। उस समय पक्षपात को छोड़ ईश्वर को सामने रखकर न्यायोचित प्रेमपूर्वक व्यवहार करना उचित है। इससे विरोधी लोग भी आप पर विश्वास करने लगेंगे। जिस पद या अधिकार पर आप अधिष्ठित हैं उसी की गरिमा के अनुसार व्यवहार करना चाहिये।

३.यथायोग्य- व्यवहार में प्रीति, धर्मानुसार के साथ यथायोग्य का विचार करना भी बहुत आवश्यक है। जैसे बकरी थोड़े से दण्ड से आपके वश में आ जाती है और सिंह को नियन्त्रित करने के लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है वैसे ही सामान्य व्यक्ति से महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त अधिकारियों को कई गुणा दण्ड का विधान मनुस्मृति ने किया है।

एक राजा के सामने एक ही प्रकार के अपराध वाले तीन व्यक्ति प्रस्तुत किये गये जिनमें एक प्रतिष्ठित व्यक्ति एक व्यापारी और एक मजदूर था। राजा ने पहले को कहा- तुम्हें शर्म आनी चाहिये। इससे अच्छा तो कहीं डूब कर मर जाते। व्यापारी को एक सौ रूपयों का दण्ड और मजदूर को कोड़े लगाने का आदेश दिया। मन्त्री ने इसका कारण पूछा तो राजा ने कहा सांयकाल आप इन तीनों का समाचार लेकर आइये। मन्त्री ने जाकर देखा जिसे कहा गया था तुम्हें शर्म आनी चाहिये वह सचमुच डूब कर मर गया। व्यापारी एक सौ रूपये दण्ड के देकर चिन्ताग्रस्त बैठा था और जिसे कोड़े लगाये गये थे वह

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

अपने साथियों के साथ मद्यपान कर नाच रहा था। इसलिये व्यवहार में इन तीनों बातों का ही ध्यान रखना चाहिये।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। आर्य समाज के छठे नियम में आत्मिक उन्नति करने का आदेश दिया है। आत्मा तो शुद्ध-बुद्ध है फिर उसकी उन्नति से क्या अभिप्राय है इस पर विचार करना होगा। यद्यपि आत्मा स्वभावतः शुद्ध-बुद्ध है परन्तु अविद्या, अविवेक के कारण बुद्धि में घटित सुख-दुःखादि को अपने में जान सुखी या दुःखी हो रहा है।

अविद्या का लक्षण करते हुये योगदर्शन में कहा है-

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु
नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।

-योग. २/५

अनित्य पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि को नित्य मानना, मैं सदा युवा ही रहूंगा यह मानना, अपवित्र मल-मूत्रादि से युक्त शरीर को पवित्र मान उसमें आसक्त होना, शरीर, मन, बुद्धि आदि को अपना मानना और दुःख रूप संसार को सुख रूप मानना यह अविद्या का लक्षण कहा है।

तद्दुष्टं ज्ञानम् (वैशे.) यह दुष्ट ज्ञान है।

व्यवहार भानु में विद्या का लक्षण इस प्रकार किया है-

प्रश्न - विद्या और अविद्या किसे कहते हैं?

उत्तर - जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार लेके अपने और दूसरों के लिये सब सुखों को सिद्ध कर सकें वह विद्या और जिससे पदार्थों के स्वरूप को उलटा जानकर अपना और पराया अनुपकार कर लेवें वह अविद्या कहाती है।

विद्या में पराविद्या और अपराविद्या दोनों का समावेश है। अपराविद्या में लौकिक व्यवहारार्थ सब पदार्थों के गुण-धर्म जान उनसे उपयोग लेना, परस्पर का व्यवहार, कर्तव्यपालन आदि सभी ज्ञान आ जाते हैं। इनसे दैनिक कार्यों में आने वाले कष्टों का निवारण होता है। जैसे वर्तमान समय में भौतिक विज्ञान ने जीवन को अधिकांश में कष्टमुक्त बना दिया है।

पराविद्या- पराविद्या आध्यात्मिक ज्ञान है जिससे आत्मा, परमात्मा के गुणों को जान, प्रकृति से छूट आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है। त्रिविध दुःखों से छूटने का एकमात्र यही उपाय है। सच्चे ईश्वर की उपासना के स्थान पर अनेक देवी-देवताओं की पूजा, गुरूडम या पैगम्बरों का बोलबाला है। परमात्मा से मिलने और मुक्ति का उपाय योगदर्शन में विस्तार से बतलाया है। उसके स्थान पर मन्त्र तन्त्र गुरू का ध्यान और अमुक पैगम्बर पर ईमान लाने से ही मुक्ति होना मान लिया है। यद्यपि आध्यात्मिक क्षेत्र में गुरू का महत्वपूर्ण योगदान है परन्तु परमात्मा गुरूओं का भी गुरू है, यह ज्ञान बहुत आवश्यक है।

अविद्या की पृष्ठभूमि में ही अहंकार, राग, द्वेष, मृत्यु भय आदि क्लेश पनपते हैं। धर्म के नाम पर प्राणियों की हिंसा, तीर्थों में स्नान, पूजा और पाप से मुक्त होना आदि अनेक पाखण्ड पनप रहे हैं। कन्याओं को भ्रूण अवस्था में ही मार दिया जाता है। निरपराध व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा जा रहा है। गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था के स्थान पर जन्म से ही जाति-पाति की कुप्रथा से समाज में वैर-विरोध बढ़ गया है।

महर्षि दयानन्द जी ने सर्वप्रथम इस पाखण्ड और अन्याय को दूर करने के लिये कुम्भ के मेले में पाखण्ड खण्डनी पताका गाड़ कर अविद्या अन्धकार में फंसे लोगों को सन्मार्ग पर लाने का कार्य प्रारम्भ किया। उनका अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश आज भी लोगों को अविद्या अन्धकार से निकाल ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करन रहा है।

प्रत्येक आर्य का यह कर्तव्य है कि महर्षि के आदेश को शिरोधार्य कर समाज मे फैले अज्ञान, अन्धविश्वास, भ्रष्टाचार, कन्या भ्रूण हत्या, जन्म से जाति पाति और गुरूडम को हटाकर वेदोक्त धर्म का पालन करें एवं अन्यों को सिखाए जाये तभी संसार में शान्ति रह सकेगी।

- आचार्य, गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

क्या वृक्षों में जीव हैं... ?

❑ अङ्ग्रेश पाल आर्य ...✍

सम्पादकीय टिप्पणी – 'क्या वृक्षों में जीव है?' इस विषय पर भूतकाल में आर्य समाज के दो समादरणीय विद्वानों पूज्य स्वामी दर्शनानन्द जी तथा पण्डित गणपति शर्मा के मध्य शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थ अनिर्णीत ही रहा था। इसलिए इस विषय पर पुनः गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। चिन्तन मनुष्य का धर्म है, अतः चिन्तन की धारा चलती रहनी चाहिए।अभी भी आर्यसमाज में दोनों पक्षों को मानने वाले व्यक्ति विद्यमान हैं तो क्यों न इस विषय को निर्णय की ओर ले जाया जाए? दोनों पक्षों के अपने-अपने तर्क एवं प्रमाण हैं। हमें सत्य ग्राहिता के लिए यत्नशील होना चाहिए, क्योंकि 'सत्य के ग्रहण और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' इसी उद्देश्य से **'क्या वृक्षों में जीव है?'** इस शृंखला का प्रारम्भ किया गया। इस शृंखला के प्रथम लेख में अक्टूबर २०१६ की पत्रिका में डॉ. रघुवीर वेदालंकार जी तथा जनवरी २०१७ के अंक में ब्र. गौरव आर्य ने तर्क एवं प्रमाणों के द्वारा इस विषय का निष्पक्ष रूप से विवेचन किया। अब मेरठ अङ्ग्रेश पाल आर्य द्वारा हिन्दी में लेख प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्य व्यक्ति भी पक्षपात शून्य, दुराग्रह रहित होकर किसी भी पक्ष के सम्बन्ध में अपने विचार दे सकते हैं, तभी निर्णय के निकट पहुँचा जा सकेगा, क्योंकि **'तर्कप्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः'**। आपके पक्ष को भी पत्रिका में विना किसी दुराग्रह के प्रकाशित किया जायेगा। हम आपके पक्ष की प्रतीक्षा में हैं....

–शिवदेव आर्य

जीवात्मा कार्य करने में समर्थ है। अपनी कर्म स्वतन्त्रता के कारण वह कुछ भी मान सकता है। किसी के मानने या न मानने पर उस पर कोई प्रतिबन्ध नही है। यह बडे आश्चर्य और दुख की बात है कि जिस महान् आत्मा ने अपना सर्वस्व हमारे लिए बलिदान कर दिया उसके भक्त कहलाने वाले १३३ वर्षों के पश्चात् भी एक मत नहीं है। समान मान्यता वाले, जिनका उदेश्य ही सबको एक मत 'वैदिक धर्म' का पथिक बनाना था, हम संगठन सूक्त का पाठ करते है 'सहनाववतुसहनो भुनक्तु ; और कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष करते है। महर्षि 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में लिखते हैं – ''जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारी पक्षपात रहित विद्वान् मानते हैं वहीं सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्य शास्त्र और ब्रह्मा से लेके जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ है, जिनको मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ।'' वे इतनी दीर्घकालीन आर्ष मान्यता का अनुगमन करते हैं। और एक हम हैं कि दो शतक पूर्व ही भिन्न-भिन्न मान्यता वाले हो गये हैं। जब हम यह कहते हैं कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने के लिए सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' तब हमारे सामने यह समस्या क्यों हैं? क्या वेद में उसका समाधान नहीं है? हम यह मानते हैं कि वैदिक साहित्य की अनेक शाखाएँ अब उपलब्ध नहीं है तथापि वर्तमान में जो वैदिक साहित्य उपलब्ध है वह भी हमारे लिए पर्याप्त है।

साहित्य में जिन तत्वों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है उन विषयों पर शास्त्रार्थ करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, ऐसे स्थल या तो हमारे अध्ययन से बाहर होते हैं या हम अपनी कल्पना प्रसूत बुद्धि से उन्हें अन्यथा मान

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

लेते हैं। वर्तमान में कुछ ऐसा भी देखने को मिलता है कि कुछ विद्वान् नामोल्लेखपूर्वक महर्षि की मान्यताओं का खण्डन करते हैं। उनका विचार कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि दो और दो (२+२=४) का योग चार तो सब कहते आ रहे हैं। यह योग तीन (३) या पाँच (५) सिद्ध करना चाहिए तब हम विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा करना उनको '**असूर्या नाम ते लोका.....चात्महनो जना**' और '**नास्तिको वेदनिन्दकः**' की श्रेणी में रख देता है। अतः अपनी सामर्थ्यानुसार सभी आर्षमान्यताओं को समझें और स्वीकार करें।

महर्षि ने सत्य पक्ष के निर्णयार्थ परीक्षा की कसौटी बताते हुए अपने ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है - 'जो जो इन परीक्षाओं से विरुद्ध है, उन उन ग्रन्थों को न पढ़ें न पढ़ावें।' क्योंकि 'लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः'। लक्षण जैसा कि 'गन्धवती पृथिवी' जो पृथिवी है, वह गन्ध वाली है। ऐसे लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण, इनसे सब सत्यासत्य और पदार्थों का निर्णय हो जाता है, (स.प्र. तृतीय समु.)

इसी समुल्लास में महर्षि ने लिखा है - 'अब जो पढ़ना-पढ़ाना हो वह अच्छी प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है। परीक्षा पाँच प्रकार से होती है।' किन्हीं विवादास्पद, सन्दिग्ध अनिर्णीत विषयों में सत्यज्ञान के लिए दर्शनों में विषय परीक्षा पद्धतियों का निर्देश किया गया है। वेद स्वतः प्रमाण ग्रन्थ है। न्याय की कसौटी बताते हुए न्याय तथा वात्स्यायन भाष्य में स्पष्ट लिखा है '**प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः**'। प्रमाणों से किसी पदार्थ की परीक्षा करना न्याय है। तत्वनिर्णयार्थ न्याय दर्शनकार ने कथा के तीन प्रकार बताएँ हैं - (१) वाद कथा, (२) जल्प कथा अैर (३) वितण्डा कथा।

वाद कथा मैत्री पूर्वक होती है, जल्प कथा जय-पराजय की भावना से होती है और वितण्डा कथा में एक दूसरे का खण्डन मात्र होता है।

वृक्षादि में जीवात्मा है या नहीं, इस विषय के सम्बन्ध में जो वर्णन वैदिकग्रन्थों का अध्ययन करने पर अपनी सामर्थ्य अनुसार मुझे प्राप्त हुआ है, वह सुविज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ।

१. '**चेतराणि चाण्डजानि च जरायुजानि च स्वेदजानि चोद्भिजानि**' -ऐतरेयोपनिषद्-३/५/३

अर्थ - और दूसरे अण्डे से उत्पन्न होने वाले, जरायु से उत्पन्न होने वाले, स्वेद अर्थात् पसीने से उत्पन्न होने वाले प्राणी और पृथिवी को फोड़कर उत्पन्न होने वाले वृक्षादि।

२. **योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः।**
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतम्॥ -कठ.-५/७

अर्थ - कोई जीव शरीर धारण करने के लिए जंगम योनियों को प्राप्त होते हैं, और कोई स्थावर योनियों को जाते हैं। ये सब अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार शरीर धारण करते हैं।

३. **तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्यण्डजं जीवजमुद्भिजम् इति**' (छान्दोग्योपनिषद्-६/३/१)

अर्थ - इन सब प्राणियों के तीन बीज होते हैं। एक अण्डे से उत्पन्न होने वाले, दूसरे जीवित जन्तुओं से उत्पन्न होने वाले जीव और तीसरे पृथिवी को फोड़कर निकलने वाले (उद्भिजम्) वृक्षादि।

४. **अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्त्र वेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन् स्त्र वेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत्स एष जीवेनाऽऽत्मनानुप्रभूतः पेपीय मानो मोदमानस्तिष्ठति।**
-छान्दोग्योपनिषद् - ६/११/१

अर्थ - हे सोम्य! इस महान् वृक्ष की जड़ में चोट मारी जावे तो वह जीवित रहेगा परन्तु रस बहने लगेगा। जो उस वृक्ष की चोटी पर चोट मारी जावे तो भी वह जीवित रहेगा परन्तु रस बहने लगेगा। (सः एषः जीवेन आत्मना अनुप्रभूतः) सो यह वृक्ष जीवात्मा से अनुप्रभूत (पेपीयमानः) व्याप्त होकर जड़ से पानी लेता हुआ (मोदमानः तिष्ठति) हरा भरा रहता हुआ खड़ा रहता है।

५. **अस्य यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति। द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति। तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति। सर्वं जहाति सर्वः शुष्यत्वेवमेव खलु सोम्य! विद्धिति होवाच।** -छान्दोग्योपनिषद्-६/११/२

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

अर्थ – इस वृक्ष की एक शाखा को जब जीव छोड़ देता है तब वह शाखा सूख जाती है। दूसरी शाखा को छोड़ देता है तब वह भी सूख जाती है। तीसरी शाखा को जब छोड़ देता है तब वह भी सूख जाती है। और जब समस्त वृक्ष को छोड़ देता है तो सारा वृक्ष सूख जाता है। हे सोम्य! ऐसी ही इस शरीर की दशा जानो। ऐसा श्वेतकेतु को उसके पिता ने कहा।

६. **उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।**
औषधयः फलयाकान्ताः बहुपुष्पफलोपगाः॥

–मनु.–१/४६

अर्थ – बीज और शाखा से उत्पन्न होने वाले, सब स्थावरजीव एक स्थान पर टिके रहने वाले वृक्षादि भूमि को फोड़कर उगने वाले कहाते हैं। इनमें फल आने पर पक कर सूख जाने वाले और जिन पर बहुत फूल और फल लगते हैं औषधी कहलाते हैं।

७. **अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः।**
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः॥

–मनु.–१/४७

अर्थ – जिन पर बिना फूल आये ही फल लगते हैं, वे 'वनस्पतियाँ' कहलाती हैं। जैसे – वट, पीपल, गूलर आदि और फूल आकर फल लगने वाले दोनों से युक्त होने के कारण ये उद्भिज् स्थावर जीव 'वृक्ष' कहलाते हैं।

८. **तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।**
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः॥–मनु.–१/४९

अर्थ – (कर्महेतुना) पूर्वजन्मों के बुरे कर्मफलों के कारण (बहुरूपेणतमसा) बहुत प्रकार के अज्ञान आदि तमोगुण से (वेष्टिताः) आवेष्टित अर्थात् घिरे हुए या भरपूर (एते) ये स्थावर जीव (४६-४८) (सुख-दुःखसमन्विताः) सुख और दुःख के भावों से संयुक्त हुए (अन्तःसंज्ञा भवन्ति) आन्तरिक चेतना वाले होते हैं। अर्थात् इनके भीतर चेतना तो होती है किन्तु चर प्राणियों के समान बाहरी क्रियाओं में प्रकट नहीं होती। अत्यधिक तमोगुण के कारण चेतना और भावों का प्रकटीकरण नहीं हो पाता।

९. **शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।**
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्य जातिताम्॥

–मनु.–१२/९

अर्थ – (नरः) जो नर (शरीरजैः कर्मदोषैः स्थावरतां याति) शरीर से चोरी, पर स्त्री गमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है, उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म, (वाचिकैः पक्षिमृगताम्) वाणी से किये हुए पाप कर्मों से पक्षी और मृग आदि तथा (मानसैः अन्त्य जातिताम्) मन से किये हुए दुष्टकर्मों से चंडाल आदि का शरीर मिलता है।

१०. **'लोको हि द्विविधः स्थावरो जङ्गमश्च तत्र चतुर्विधो भूत ग्रामः स्वेदजाण्डजोद्भिजजरायुजसंज्ञः'**

–सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय १/२२

अर्थ – स्थावर और जङ्म द्विविध लोक में चार प्रकार का प्राणि सूमह है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज चार भेद हैं।

११. **'तथा हि सूर्य भक्ताया यथा यथा सूर्यो भ्रमति तथा भ्रमणाद् दृगनुमीयते'**

–आयुर्वेदभाष्यकार आचार्य चक्रपाणि

अर्थ – सूर्यमुखी फूल का मुख (अग्रभाग) सूर्योदय से सूर्यास्त तक सूर्य की ओर रहता है। इससे अनुमान किया जाता है कि यह पुष्प चक्षुरिन्द्रिय से युक्त है। इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं। यथा–'लवली मेधस्तनित श्रवणात् फलवती भवति। बीजपूरकमपि श्रृंगालादि..'

१२. **वसागन्धनादतीव फलवद् भवति। वृन्ताकानां मत्स्यवसासेकात् फलाढ्यतया रसनेन्द्रियत्वमनुमीयते। अशोकस्य कामिनीपादतलाहतिसुखिनः स्तवकि तस्य स्पर्शनानुमानम्। इति**

उपर्युक्त पंक्तियों का आशय यह है कि लवली (हरफारे वड़ी) मेघ शब्द को सुनकर फलवती होती है। गीदड़ आदि की चबी की गन्ध से बिजौरा नीबू फलयुक्त होता है। मछली की चर्बी का आस्वादन करने से वृन्ताक (बैंगन) में अधिक फल लगते हैं। कामिनी (युवती स्त्री) के चरण प्रहार (लात) से अशोक वृक्ष कुसुमित हो जाता है। इन उदाहरणों से क्रमशः लवती लता में श्रवण सामर्थ्य,

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

बिजौरा वृक्ष में घ्राणशक्ति, वृन्ताक (बैंगन) में रसना शक्ति और अशोक वृक्ष में स्पर्शन क्षमता प्रतीत होती है।

इन प्रमाणों के पश्चात् अब दर्शनशास्त्रों के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं –

१. **'प्राणापाननिमेषोन्मेष जीवनमनोगतीन्द्रियान्तर विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि'**

–वैशेषिक ३/२/४

२. **'इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्'**

–न्यायदर्शन–१/१/१०

अर्थ – दोनों सूत्रों में (इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा, वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ, बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप, अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक, पहिचानना ये तुल्य है परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राणवायु को बाहर निकालना, (अपान) प्राण का बाहर से भीतर को लेना, (निमेष) आँख को मीचना, (उनमेष) आंख को खोलना, (जीवन) प्राण को धारण करना, (मन) निश्चय स्मरण और अहंकार करना, (गति) चलना, (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना, (अन्तविकार) भिन्न–भिन्न क्षुदा, तृषा, हर्ष शोकादि युक्त होना ये जीवात्मा के गुण आत्मा से भिन्न है। इन्ही से आत्मा की प्रतिती करनी (चाहिए) क्योंकि दृश्य सबसे वह सबसे स्थूज नही है।

–स.प्र. सप्तमसमु.

उपर्युक्त प्रमाणों का अवलोकन कर लेने पर हम इस निर्णय पर पहुॅचते है। कि समस्त प्राणी जगत् स्थावर और जङ्गम भेद से चार वर्गों में (जरा युज अण्डज, स्वेदज, उदभिज्ज)विभाजित है। इन समस्त प्रकार की योनियों में जीवात्मा अपने शुभाशुभ कर्म फलों को भोगने के लिए आवागमन करता है। इन प्रमाणों से तो यही सिद्ध होता है कि वृक्षादि में जीवात्मा है। लेकिन न्याय और वैशेषिकदर्शन सूत्रों में जो लक्षण आत्मा के कहे गये है वे वृक्षादि में प्रकट नही होते। इस समाधान से पूर्व हम कुछ सम्भावित कारणों का उल्लेख करते है। हमारे सामने यह विचार कैसे उत्पन्न हुआ कि वृक्षादि मे जीवात्मा है या नही है। उनमें सबसे प्रथम कारण तो यही है कि दर्शन सूत्रों में कहे गये जीवात्मा के लक्षण वृक्षादि में दिखाई नही पडते है। तो माँसाहार अभक्ष्य और शाकाहार भक्ष्य है। यदि हम वृक्षादि में जीव मानते है तो यह अभक्ष्य तथा हिंसा रूप अधर्म है। मुख्य रूप से तो यही दो कारण है। हमें इन्हीं पर विचार करना है। प्रमाणों के द्वारा परीक्षा करके अर्थ ग्रहण करना न्याय है – (तर्कप्रमाणाभ्याम् वस्तु सिद्धिः)। अपने शरीर में तो सभी आत्मानुभूति करते है। क्योंकि इन लक्षणों के अभाव में भी स्वानुभूति होती है। परन्तु अपने शरीर से अन्यत्र हम आत्मा का प्रत्यक्ष न स्वयम् कर सकते है और नहीं है अतः इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

पूर्वोक्त जो उपनिषद्, मनुस्मृति और आयुर्वेद आदि से प्रमाण उद्धृत किये हैं उनका दर्शनसूत्रों के साथ सामंजस्य दिखाई नहीं पड़ रहा है। अब यहाँ पर इनकी सामंजस्यपूर्ण स्थिति दिखाने का प्रयास करते है। आर्ष ग्रन्थ शब्द प्रमाण हैं और जीवात्मा के लक्षण सूत्र भी शब्द प्रमाण है। दर्शन सूत्रों का उपदेश आत्मा के (चेतना) अस्तित्व को सिद्ध करना है। शरीर, इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत से आत्मा भिन्नतत्व है। जो नास्तिक दर्शन और कतिपय आधुनिक वैज्ञानिक वर्ग जड़ संघात से आत्मा का उत्पन्न होना मानते हैं और जो अद्वैतवादी सम्प्रदाय मात्र चेतन (आत्मा) की सत्ता को स्वीकार करते हैं। ये दर्शन सूत्र ऐसी अवैदिक मान्यताओं को निर्मूल कर देते हैं।

अब हम यह देखते हैं कि आत्मा के ये लक्षण किसी प्राणी या मनुष्य में कब दिखाई देते हैं? शरीर किस अवस्था में होता? क्योंकि चेतन के स्तर पर इस शरीर में चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ये चार अवस्थाएँ होती हैं। इन सब अवस्थाओं में आत्मा के ये सब लक्षण प्रकट नहीं होते। अब यदि हम यह मानते हैं कि जिन अवस्थाओं में ये लक्षण प्रकट नहीं होते तो उन अवस्थाओं में तब वहाँ पर आत्मा नहीं है। ऐसा मानना प्रत्यक्ष और प्रमाण विरुद्ध होगा क्योंकि जीवन सब अवस्थाओं में है। यदि यह लक्षण न रहे तो जीवितमृत का भेद समाप्त हो जायेगा। दिव्य ज्योति जागृति संस्थान के पूर्व आचार्य, संस्थापक श्री आशुतोष महाराज के मृत शरीर

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

को उनके भक्त व शिष्य जीवित मान रहे हैं।

माण्डूक्य उपनिषत्कार कहता है – '**सर्वं ह्येतद् ब्रह्म। अयमात्मा, ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्**' यहाँ पर यह अवस्था वर्णन ओ३म् वाच्य परमात्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है। यह सर्व सम्मत सिद्धान्त हैं। इस अवस्था विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ पर जीवात्मा है वहाँ पर इन सब लक्षणों का होना आवश्यक नहीं है न्यूनाधिक हो सकते हैं। इसके विपरीत जहाँ पर ये सब लक्षण मिलते हैं वहाँ पर आत्मा का होना अवश्य है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वृक्षादि में जीवात्मा सुषुप्ति अवस्था में है। वृक्षों की सुषुप्ति अवस्था का उल्लेख स्पष्ट रूप में 'सत्यार्थप्रकाश' द्वादश समुल्लास में मिलता है जो अग्रलिखित है।

इसके उपरान्त द्वितीय कारण का समाधान प्रस्तुत है। निम्नलिखित विवरण के प्रकाश में हमारी उस भयावह समस्या का हल हो जाता है जिसमें शाकाहार करने से हिंसाजन्य पाप कर्म होता है। और जिस अधर्म से छुटकारा पाने के लिए एक अवैदिक मान्यता को जन्म दिया। हमने 'न रहेगा बांस न बजेगी बाँसुरी' वाली वाग्धारा के अनुसार वृक्षों में जीवात्मा के अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया। ऐसी अवधारणा करते समय यह विचार नहीं किया कि वृक्षों में जब जीवन पाया जाता है तो जीवन किस द्रव्य का गुण (लक्षण) है। यदि हम इसको परम सत्ता परमात्मा का गुण मानते हैं तो यह अति व्याप्ति दोष होगा। क्योंकि इससे जड़-चेतन, जीवित-मृत आदि व्यवस्था न हो सकेगी। और दूसरे इस विषय के सम्बन्ध में प्रतिवादी के पक्ष का परिहार हो जाता है। बाद का विषय ही समाप्त हो जायेगा। क्योंकि आपकी मान्यतानुसार परमात्मा सर्वव्यापक है। अतः हम यह सुस्पष्ट विवरण '**आप्तोपदेशः शब्दः प्रमाणः**' के आधार पर 'सत्यार्थप्रकाश द्वादश समुल्लास' से उद्धृत करते हैं – यदि तुम्हारे तीर्थंकर भी पूर्ण विद्वान् होते तो ऐसी व्यर्थ बातें क्यों करते? देखो, पीड़ा उसी जीव को पहुँचती, जिसकी वृत्ति सब अवयवों के साथ विद्यमान हो, इसमें प्रमाण है –

पञ्चावयव योगात्सुसंवितिः

–यह सांख्यशास्त्र का सूत्र है। (५/२७)

जब पाँचों इन्द्रियों का पाँचों विषयों के साथ सम्बन्ध होता है तभी सुख वा दुःख की प्राप्ति जीव को होती है। जैसे बधिर को गाली प्रदान, अन्धे को रूप वा आगे से सर्पव्याघ्रादि भयदायक जीवों का चला जाना, शून्य बहिरी वाले को स्पर्श, पिन्नस रोग वाले को गन्ध और शून्य जिह्वा वाले को रस प्राप्त नहीं हो सकता है। इसी प्रकार उन जीवों की व्यवस्था है। देखो, जब मनुष्य का जीव सुषुप्ति दशा में रहता है तब उसको सुख वा दुःख की प्राप्ति कुछ भी नहीं होती, क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है परन्तु उसका बाहर के अवयवों के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से सुख-दुःख की प्राप्ति नहीं कर सकता।

और जैसे वैद्य वा आजकल के डॉक्टर लोग नशे की वस्तु खिला वा सुंघा के रोगी पुरुष के शरीर के अवयवों को काटते वा चीरते हैं, उसको उस समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे 'वायुकाय' अथवा अन्य स्थावरशरीर वाले जीवों को सुख वा दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न – जब वे जीव हैं तो उनको सुख-दुःख क्यों नहीं होता होगा?

उत्तर – सुनो भोले भाइयों! जब तुम सुषुप्ति में होते हो तब तुमको सुख-दुःख प्राप्त क्यों नहीं होते? सुख-दुःख की प्राप्ति का हेतु प्रसिद्ध सम्बन्ध है। अभी हम इसका उत्तर दे आये हैं कि नशा सुंघाके डॉक्टर लोग अंगों को चीरीते-फाड़ते और काटते है, जैसे उनको दुःख विदित नहीं होता, उसी प्रकार अति मूर्च्छित जीवों को सुख-दुःख क्योंकर प्राप्त होवें। क्योंकि वहाँ (सुख-दुःख) की प्राप्ति होने का साधन कोई भी नहीं है।

प्रश्न – देखो, 'निलोति' अर्थात् जितने हरे शाक-पाल और कन्दमूल हैं, उनको हम लोग नहीं खाते, क्योंकि 'निलोति' में बहुत और कन्दमूल में अनन्त जीव हैं। जो हम उनको खावें तो उन जीवों को मारने और पीड़ा पहुँचने से हम लोग पापी हो जायें।

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

उत्तर – यह तुम्हारी बड़ी अविद्या की बात है, क्योंकि हरित शाक के खाने में जीव का मरना वा उनको पीड़ा पहुँचना क्योंकर मानते हो? भला, है तो हमको भी दिखलाओं। तुम कभी प्रत्यक्ष नहीं दीखती और जो दीखती है तो हमको भी दिखलाओं। तुम कभी प्रत्यक्ष न देख वा न हमको दिखा सकोगे। जब प्रत्यक्ष नहीं, तो अनुमान और शब्द प्रमाण भी कभी नहीं घट सकते। फिर जो हम ऊपर उत्तर दे आये, वह इस बात का भी उत्तर है, क्योंकि जो अत्यन्त अन्धकार, महासुषुप्ति और महा नशे में जीव हैं, उनको सुख-दु:ख की प्राप्ति मानना तुम्हारे तीर्थंकरों की भी भूल विदित होती है, जिन्होंने तुमको ऐसा युक्ति और विद्या विरुद्ध उपदेश किया है।

महर्षि मनु वेद को स्वत: प्रमाण, अचिन्त्य, अप्रमेय, अप्रतत्य अर्थात् निर्भ्रान्त मानते हैं। अत: वेद ज्ञान पर तर्क करने की आवश्यकता नहीं रहती, वेद के विपरीत कुतर्क होता है।

पूर्व प्रोक्त शास्त्रवचनों का प्रामाण्य वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए परम प्रमाण वेद मन्त्र उद्धृत करते हैं-

अस्थाद् द्योरस्थात् पृथिवीस्थाद् विश्वमिदं जगत्।
अस्थुर्वृक्षा उर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव॥

-अथर्ववेद-६/४४/१

भाषार्थ - (द्यो:) सूर्य लोक (अस्थात्) ठहरा है। (पृथिवी) पृथिवी (अस्थात्) ठहरी है। (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् (अस्थात्) ठहरा है। (उर्ध्वस्वप्ना:) ऊपर को मुख करके सोने वाले (वृक्षा:) वृक्ष ठहरे हैं। ऐसे ही (तव) तेरा (अयम्) यह (रोग:) रोग (तिष्ठात्) ठहर जावे और न बढ़े।

प्रस्तुत अथर्ववेद मन्त्र में वृक्षों की ऊपर मुख करके सोने वाला कहा है। इससे यही निश्चित होता है कि वृक्षों में जीवात्मा हैं। क्योंकि स्थूल देह में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाएँ जीवात्मा के होने पर ही होती हैं।

इस विषय पर जो लेख पत्रिका के पूर्व अंक में प्रकाशित हुआ है। उसकी समीक्षा करना विषयान्तर होगा। इस लेख में वर्णित विषय वस्तु के अध्ययन के उपरान्त दो प्रश्न आप कर सकते हैं। प्रथम - इस योनि में जीवात्मा को पूर्वजन्मों में किये हुए अशुभ कर्मफल का भोग कैसे प्राप्त होता है? इसका उत्तर यह है कि किसी मनुष्य या प्राणी को जीवनयापन की समस्त क्रियाएँ बन्द कर दी जाएँ तो आप अनुमान करें कि वह मनुष्य प्राणी कितना सुख-दु:ख अनुभव करेगा। यही उसकी भोग प्राप्ति की अवस्था होगी। द्वितीय प्रश्न - 'सत्यार्थ प्रकाश' के त्रयोदश समुल्लास में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं कि 'भला! वृक्ष जड़पदार्थ है। क्या महर्षि एक पदार्थ को कहीं चेतन और कहीं जड़ लिखेंगे? आप इस प्रश्न के उत्तर के लिए द्वादशसमुल्लास के लेख में उद्धृत प्रकरण को देखें। वृक्षों में आत्मकेन्द्रियार्थ सन्निकर्ष का अभाव है जिस कारण से वृक्ष को जड़ पदार्थ कहा है। यहाँ पर 'जड़' शब्द का अर्थ अज्ञान से है। जैसे लोक व्यवहार में भी अत्यधिक मूर्ख को वज्र मूर्ख या जड़ बुद्धि कहते हैं। वृक्ष अन्तश्चेतन है। अत: महर्षि का लेख विरोधी नहीं है, प्रकरण के अनुकूल है। जैसे -**'करत-करत अभ्यास जड़मति होत सुज्ञान'**

अन्त में इस विषय को अनुमान प्रमाण के पञ्चावपवोपन्न स्वरूप में देखते हैं।

प्रतिज्ञा - वृक्षों में जीवात्मा है।

हेतु - जीवनदर्शनात् जीवन देखे जाने से।

दृष्टान्त - सुषुप्त मनुष्यवत् सोये हुए मनुष्य की तरह।

उपनय - जैसे सोये हुए मनुष्य में जीवात्मा है वैसे वृक्षों में भी है।

निगमन - वृक्षों में जीवात्मा का होना सिद्ध है।

आर्ष साहित्य में भाषा सरल एवं भाव गम्भीर होते हैं। उनके गम्भीरभावों को समझने के लिए उनका गहन अध्ययन करना आवश्यक है। महर्षि की मान्यताओं पर श्रद्धा रखने वाले भी लेकिन किन्तु-परन्तु आदि शब्दों का सहारा लेकर अपनी मान्यताएँ बना लेते हैं। मनुष्य के पतन

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

का काण मिथ्या धारणाएँ हैं। अतः आप

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥

–मनुस्मृति–१/१३०

जो वेद और वेदानुकूल आप्तपुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति, पंक्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिए।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते सः धर्मं वेदनेतरः॥

–मनुस्मृति–१२/१०६

जो मनुष्य वेद और ऋषिविहित धर्मोपदेश अर्थात् धर्मशास्त्र का वेद शास्त्र के अनुकूल तर्क के द्वारा अनुसंधान करता है। वही धर्म के तत्व को समझ पाता है, अन्य नहीं।

महर्षि प्रोक्त शास्त्र वचनों को ध्यान में रखकर किसी विषय का निर्णय करें। कोई कुछ भी मान सकता है परन्तु किसी के मानने या न मानने से वस्तु स्थिति बदल नहीं जाती महर्षि दयानन्द सरस्वती सहित आर्ष साहित्य के उपलब्ध प्रमाण आपके समक्ष प्रस्तुत कर दिये हैं। इस लेख को लिखने का मेरा उद्देश्य ऋषि यज्ञ में एक आहुति मात्र देना है।

–ग्रा. बटावली, पो.–बहसूमा,
जि.–मेरठ (उ.प्र.)–२५०४०४

आर्ष–ज्योतिः

फार्म – ४ (नियम ८ देखिए)

१.	प्रकाशन स्थान	:	देहरादून (उत्तराखण्ड)
२.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३.	मुद्रक का नाम	:	जयरति प्रिंटिग प्रेस
	क्या भारत का नागरिक है ?	:	हाँ
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)		–
	पता	:	आर्ष–ज्योतिर्मठ–गुरुकुल, दून वाटिका–२ पौंधा, देहरादून–२४८००७
४.	प्रकाशक का नाम		आचार्य धनञ्जय
	क्या भारत का नागरिक है ?	:	हाँ
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)		–
	पता	:	आर्ष–ज्योतिर्मठ–गुरुकुल, दून वाटिका–२ पौंधा, देहरादून–२४८००७
५.	सम्पादक का नाम		आचार्य धनञ्जय
	क्या भारत का नागरिक है ?	:	हाँ
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)		–
	पता	:	आर्ष–ज्योतिर्मठ–गुरुकुल, दून वाटिका–२ पौंधा, देहरादून–२४८००७
६.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार–पत्र के स्वामी हो तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हैं।	:	आचार्य धनञ्जय आर्ष–ज्योतिर्मठ–गुरुकुल, दून वाटिका–२, पौंधा, देहरादून–२४८००७

मैं आचार्य धनञ्जय एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह./आचार्य धनञ्जय
प्रकाशक

दिनाङ्क ३ मार्च २०१७

घर बैठे पढ़ने के लिए क्लिक करें – www.pranwanand.org

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

वर्ण व्यवस्था तथा जातपात का प्रभाव

❑ **मामचन्द रिवाडिया...**

प्राचीन काल में भारतीय अर्थ व्यवस्था के अर्न्तगत श्रम विभाजन के रूप में वर्ण व्यवस्था स्वीकार की गयी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। समाज का यह चर्तुविभाजन कर्म के आधार पर किया गया था। जिसका स्पष्ट निदेश 'मनु' ने अपने स्मृतिग्रन्थ में किया है–

१. मनु के अनुसार ब्राह्मण के कर्तव्य और गुण निम्न है– पढना–पढाना, यज्ञ करना–कराना, दान लेना और देना ये छः कर्म हैं।

२. क्षत्रिय के कर्तव्य और गुण निम्न है– न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोडकर श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना। विद्या धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थो का व्यय करना। वेदादि शास्त्रों का पढ़ना और पढ़ाना और विषयों में न फसकर जितेन्द्रिय रहकर सदा आत्मा से बलवान् रहना।

३. वैश्य के कर्तव्य और गुण निम्न है– व्यापार करना, कृषि–पशुपालन करके देशवासियों का भरण पोषण करना, विद्या धर्म की वृद्धि के लिए धनादि की व्यवस्था करना।

४. शूद्रों के कर्म– समाज के सब वर्गो की सेवा करना इनका एकमेव मुख्य कर्तव्य है और इसी सेवा के आधार पर अपना जीवन निवाह करना। मनु महाराज की अपरोक्त उक्तियों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में वर्ण विभाजन गुण कर्म के आधार पर किया गया था। कोई जन्म से बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र नहीं होता अपितु कर्म के आधार पर होता है। यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय का ११ वाँ मन्त्र है। इससे कहा गया है कि ब्राह्मण अपने गुणों के कारण समाज का मुख होता है। क्षत्रिय अपनें रक्षक गुणों के कारण बाहू होता है। वैश्य अपने कृषि आदि कार्यो के कारण समाज का उदर होता है। शूद्र अपने सेवा कार्यो के कारण पग होता है। जिस प्रकार इन अंगो का शरीर में महत्व है उसी प्रकार समाज में इन चार वार्णों का महत्व है। मनु महाराज ने यह भी लिखा है कि शूद्र काल में जन्म लेकर अपने कर्म के आधार पर शूद्र, ब्राह्मण– क्षत्रिय, वैश्य भी और ब्राह्मण अपने कर्मो के आधार पर शुद्र भी बन सकता है अर्थात् चारों वणो ं में जिस जिस वर्णों के पुरूष– स्त्री अपने–अपने गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होंगे उन्हीं वर्णों में गिने जायेंगे।

इसी तरह का भाव आपत्त धर्म सूत्र में भी व्यक्त किया है– धर्माचरण से युक्त वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त कर लेता है और वह उसी वर्ण में गिना जाता है जिसके वो योग्य होता है। वैसे भी अधर्माचरण से युक्त उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जाता है। सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समु. में लिखा है ऐसी सुन्दर वर्ण व्यवस्था के होते हुए भी स्वार्थी एवं अहंकार के लिप्त होकर मदमत्त हुए ब्राह्मणों ने मिथ्या कल्पना का विस्तार करके नाना प्रकार जटिलताओं का विकास किया जिसको ब्रह्मणवाद कहते हैं।

प्राचीन काल में गुरुकुल के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। चारों वर्णों के बच्चे साथ–साथ गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्या प्राप्ती के बाद जो जैसा होता था उसी वर्ण में जाकर अपना कर्तव्य निभाता था। जब से जन्म के आधार पर वर्ण–व्यवस्था कायम हुयी है तब से इस देश में विघटन पैदा हो गया है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर ब्राह्मण दुष्टता पूर्ण कार्य करता है फिर भी ब्राह्मण है किन्तु शुद्र धर्मानुसार यज्ञ–हवन, पठन–पाठन करता है फिर भी शूद्र है। इसी से सामाजिक व्यवस्था चर्मरा गयी है।

आज जात–पात ने हमारे देश को पंगु बना दिया है। जात–पात की राजनीति का देश में बोलबाला है। जात–पात के आधार पर ही बड़े–बड़े नेता बन रहें है। हर वर्ग इन्हीं राजनेताओं के पीछे बिना विचारे भाग रहा है। समाज उन व्यक्तियों और संस्थाओं को सम्मान नही देता जो प्राचीन वर्ण–व्यवस्था पर आज भी कार्य कर रहें है।

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

आज सार्वजनिक जीवन में खोटे सिक्को का चलन इतना हो गया है कि अब अच्छे सिक्के कही कही दिखाई भी देते है तो वह नकली मालूम पडते है। आज जो जितना अधिक भ्रष्ट और अपराधिक प्रवृत्ति का व्यक्ति होगा वह उतना ही प्रतिष्ठित नेता होगा। जिसके पीछे कई सम्प्रदाय, जाति, वर्ग होता है उसके संकेत पर सत्ता प्रतिष्ठान उठक-बैठक लगातें हैं। देश का गद्दार देश भक्ति का उपदेश देता है और विदेशी धन पर पलने वाला स्वदेशी प्रवक्ता बनता है। देश की अखण्डता को खंडित करने वाले राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार समझे जाते है।

वैदिक वर्ण व्यवस्था ने समाज के सामने यह शर्त रखी थी कि तुम्हारे लिए सम्मान सत्ता और सम्पदा के अवसर समान रूप से उपलब्ध है तुम स्वयं ही अपना मार्ग चुन लो कि तुम्हे क्या चाहिए? सम्मान चाहिए या सम्पदा का राज सिंहासन? इस चुनाव करने तक तो व्यक्ति स्वतन्त्र रहता था। बाद में यह शर्त रखी थी की सम्मान उसे मिलेगा जो प्रबुद्ध एवं त्यागी होगा। सभी को त्यागी व्यक्तियों का सम्मान करना होता था क्योंकि वह अपने लिए नहीं जीता था बल्की समाज के लिए जीता था। जब तक देश में प्राचीण वर्ण व्यवस्था कायम रही तब से देश भी बिगडता गया। आज देश में चारों तरफ हा-हाकार मचा हुआ है। पुनः जाति सम्बन्ध होने की सम्भावना बढ गयी है। चारों तरफ वोट राजनिति ने समाज में विगठन पैदा कर दियार है। दलितों शोषितों पर अत्याचार बढ गये है। वे सामूहिक रूप से धर्मान्तरण कर रहे है। मेरी मान्यता है कि जब धर्मान्तरण होता है तो किसी सीमा तक राष्ट्रीयता भी होती है। रिवाडी जिले के कालडावास गाव में दलितों की पिटाई की गयी कि वह घोडी पर क्यों चढ़े।

मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले के तलैया गाँव में हरिजन औरतों की बुरी तरह पिटाई इस लिए हुई कि उन्होने नंगे होकर नाचने से मना कर दिया था। फतेहपुर जिले के धर्मपुर में वगराज हरिजन को इसलिए जिन्दा जला दिया गया कि उसने अपनी पत्नी कुच्ची देवी को सामंतों की हवस शान्त करने के लिए उसके साथ भेजने से मना कर दिया था। वैदिक वर्ण-व्यवस्था पुनः स्थापित करने तथा जात-पात को समाप्त करने के लिए देश में ऐसा संगठन बनाने की आवश्यकता है जिसमें चरित्रवान्-निष्ठावान् तथा निःस्वाार्थ भाव से काम करने वालें पूर्ण कालिक व्यक्ति हो, जो देश में जाकर इस कार्य को करें। गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर अन्तर-जातीय विवाह भी वर्ण व्यवस्था तथा जात-पात रहित समाज का निर्णय समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकते है।

श्री रामराज में भारत की राजधानी दिल्ली में ५-११-२००१ को हजारों की संख्या में दलित समाज के व्यक्तियों का हिन्दू धर्म धर्मान्तरण कराकर यह सिद्ध कर दिया है कि अब भी हिन्दुओं के नेता नहीं जागे तो हिन्दू धर्म अल्पसंख्यकों में आ जायेगा।

-संस्थापक, महामन्त्री,
आर्यसमाज ए/सी-२३ टैगोर गार्डन,
नई दिल्ली-२७

होलिकोत्सव के पर्व पर सहृदपाठकों से निवेदन

होलिकोत्सव पर्व जहाँ एक ओर सामाजिक एवं धार्मिक है वहीं हर्षोल्लास का भी त्योहार है। बाल वृद्ध, नर-नारी इसे बडे उत्साह से मनाते है। इसमें जाति-भेद, वर्ण-भेद आदि अनेक भेद-भाव का कोई स्थान नहीं होता है। आज-कल लोग अपने इष्ट मित्रों साथी-संगियों के वस्त्रों को रंग-बिरंगे रंगों से लतपत करते हैं। उनके मुँह पर गुलाल चपेट, कीचढ़ आदि फेंकना तथा आँखों में रंग झौकना आदि कुकृत्य करते हैं। प्राचीनकाल में इस आधुनिक रंग-बखेरने और गुलाल उडाने की कुप्रथा का यथार्थ स्वरूप परस्पर सुगन्धित इत्रादि उपहार में देना तथा सामुहिक यज्ञानुष्ठान के माध्यम से सामाजिक सद्भावना, प्रकृति के संक्रमण काल में उत्पन्न रोगों का निस्तारण करना था। इस पर्व पर सामाजिक सद्भावना बढ़ाने हेतु सामुहिक यज्ञानुष्ठान कर संगीतमण्डिलियों द्वारा श्रवणसुखद गीतवाद्य से हर्षोल्लास पूर्वक ईशगुणानुवाद से आत्मा के उत्कर्ष का आयोजन करना चाहिए।

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

प्रियभारतम् मे

❑ शुभम्...✍

पातु वो भारता शम्भोः शैवशक्तिर्निरन्तरम्।
यया सम्पूर्णसंसारे भारतं भारतं सदा॥१॥

अहो यदस्यां नवनीतभूमौ,
प्रभातकाले विचरन्ति देवाः।
गायन्ति पुण्यानि गुणानि यस्य,
देवाः मनुष्याः निजपुण्यगीर्भिः॥२॥

रामश्च कृष्णश्च हरीशचन्द्राः,
माघश्च हर्षः कविकालिदासाः।
महर्षयो वेदसमाः वरेण्याः
बभूवु यत्र प्रियभारतं मे॥३॥

पतंगरंगान्तरक्तरागम्,
कषायवस्त्रं प्रियभूषणञ्च।
येषाञ्च परमार्थजुषां पवित्रम्
कषायिदीप्तं प्रियभारतं मे॥४॥

संगीतगीतेन जगाम गीतम्,
या भारती भारतभारता वै।
शास्त्रातिपूता ननु वेदभूता,
प्रणीयते सा प्रियभारतस्य॥५॥

वसुन्धरा काकिलकूजकूजिता,
सुगन्धिता कन्दर्परागगन्धितैः।
पूता नु सामर्ग्यजुषामृचाभिः,
प्रणीयते सा प्रणतैर्विभूतिभिः॥६॥

विभूतिभिर्भूरिविभूतिभूतैः,
शिवाधिभूतैरथ भूषिता या।
सा मानसैः पुण्यधरा मता वै,
विभूतिधन्यं प्रियभारतं मे॥७॥

गुरोर्गुरुर्गौरवगारसारम्,
गुरोः कुले गोरतया गिरन्ति।
बुधास्सुधाधौमथातिपूतम्,
बुधादिधन्यं प्रियभारतं मे॥८॥

विद्यानुरक्तो नन्वीशभक्तः,
सक्तः सदा भासविभासकासे।
वर्गे वरो ब्राह्मणब्राह्मदक्षः,
ब्राह्मे रतं वै प्रियभारतं मे॥९॥

येषाञ्च शस्त्रास्त्रधुरीधराणाम्,
धरामदीया गतभयविशोका।
हेतोस्तु क्षात्राः धृतदग्धदेहाः,
क्षात्रैस्सशक्तं प्रियभारतं मे॥१०॥

वित्तेशवंशे रतमानसोऽसौ,
वणिक्कलाकौशलकर्मकुशलः।
वर्गे तृतीयो वैश्यस्य वर्गः,
धनाढ्यधन्यं प्रियभारतं मे॥११॥

सेवापरो भारतभारतस्य,
सेवासु रक्तो वर्गत्रयाणाम्।
वर्गश्चतुर्थो ननु शूद्रनामा,
शूद्रैस्सुसेव्यं प्रियभारतं मे॥१२॥

क्वचिद्धरा हैमशिलानुरक्ता,
रक्ता क्वचित्तापप्रतापतप्ता।
सिक्ता क्वचित्सन्ततवृष्टिवर्गैः।
धरातिधन्यं प्रियभारतं मे॥१३॥

प्रभूतभागभवैः परागैः,
कचाचितश्चारूपवित्रभूतः।
अब्धिप्रियाभिर्भवसागरे ना।
तत्पुण्यदेशं प्रियभारतं मे॥१४॥

विकरालकाले मम देवभूमिः,
शम्भो! त्वदीया शुभशैवयाचिका।
सुशोभय विश्वगुरोः पदास्पदे,
शुभाशुभं सम्प्रति त्वत्समाश्रितम्॥१५॥

-हिन्दूमहाविद्यालयः,
देहलीविश्वविद्यालयः

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

परोपकारिणी सभा के प्रधान स्व. डॉ. धर्मवीर के प्रति

श्रद्धाञ्जली गीत

(तर्ज - है प्रीत जहाँ की रीत सदा.....) ❑ **पं. सत्यपाल 'पथिक'...**✍

ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार बनाकर चले गये।
सबको प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये॥
ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार.....

सब सज्जन पुरुष खुले दिल से इक बात हमेशा कहते हैं,
शुभकर्मशील इनसान सदा दुनियाँ के दिलों में रहते हैं,
सूरज की तरह दिखने वाले आलोक फैलाकर चले गये,
सबके प्रिय डाक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये॥१॥
ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार.....

उपकार भावना से सबको सन्मार्ग दिखाते देखा है,
उलझे मत वाले लोगों की उलझन सुलझाते देखा है,
बदसूरत चेहरे वालों को दर्पण दिखलाकर चले गये,
सबके प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये॥२॥
ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार.....

गम्भीर सरल उपदेशों से हर दिल को लुभाया करते थे,
नस नस में उतर जाने वाले सन्देश सुनाया करते थे,
वह वैदिक जीवन शैली को घर-घर पहुँचा कर चले गये,
सबके प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये॥३॥
ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार.....

कब कौन-सा पत्ता पीपल को पतझड़ की नमस्ते कह जाये,
संसारवृक्ष चुपाचाप खड़ा हाथों को मसलता रह जाये,
क्या कहें 'पथिक' सबके दिल में निज प्यार बसाकर चले गये,
सबके प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये॥४॥
ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार.....

-७० ए गोकुल नगर, मजीठा रोड़,
अमृतसर-१४३००१

पुरुषार्थ बड़ा या प्रारब्ध?

पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिए है कि जिससे सञ्चित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते, और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा 'पुरुषार्थ' बड़ा है।

-स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm

प्रवेश सूचना

गुरुकुल भैयापुर लाढ़ौत रोड़, रोहतक (हरियाणा)

२५ वर्ष पुरानी सुप्रसिद्ध संस्था

Affiliated to C.B.S.E.(531114) New Delhi an English Medium

www.gurukulbhaiyapur.org

रजिस्ट्रेशन प्रारम्भ

★ प्रवेश परीक्षा २ अप्रैल २०१७

पश्चात् प्राचार्य की विशेष अनुमति से ही प्रवेश सम्भव है।

ध्यान दें :- प्रवेश परीक्षा में ८० प्रतिशत अंक प्राप्तकर्ता छात्रों का प्रवेश नि:शुल्क ।

दसवीं पास ९० प्रतिशत अंक प्राप्त किए हुए छात्र का प्रवेश नि:शुल्क।

विशेषताएँ :-

★ सी बी एस सी बोर्ड, नई दिल्ली से मान्यता प्राप्त सं.-५३v१११४।

★ गुरुकुल एक आधुनिक हॉस्टल है।

★ उद्देश्य आधुनिक शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चरित्र निमार्ण।

★ संध्या-हवन, योगासन, प्राणायाम खेल समन्वित नियमित दिनचर्या और धर्म शिक्षा द्वारा संस्कारित वातावरण ।

★ इंग्लिश मीडियम (अंग्रेजी माध्यम)।

★ इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स के लिए भाषा प्रयोगशाला।

★ विशाल क्रीड़ास्थल ।

★ सी सी टी वी कैमरों द्वारा निरिक्षण।

★ शत-प्रतिशत (१००:) परीक्षा परीणाम।

प्राचार्य

मो.-7027700947,7027700949,7027700950,7027700941 **आचार्य हरिदत्त**

वेद किन का नाम है?

जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं, जिनसे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, उनको वेद कहते हैं। **-आर्य्योदेश्यरत्नमाला**

क्या वेदों में इतिहास है?

ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं, और इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं, किन्तु विशेष जिस-जिस शब्द से विद्या का बोध होवे, उस-उस शब्द का प्रयोग किया है, किसी मनुष्य की संज्ञा या विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।

-सत्यार्थप्रकाश,सप्तमसमुल्लास

This document is created by GIRDAC PDF Creator Pro trial version
GIRDAC PDF Creator Pro full version does not add this green footer
Full version can be ordered from http://www.girdac.com/Products/Buy.htm